अध्याय–तृतीय

प्रमुख सूफी फकीर एवम् सूफियाना गायन शैलियाँ

मध्यकाल में भक्ति आंदोलन लहर में भारतीय संगीत के अंतर्गत जहां भक्तों, संतों, गुरुओं आदि द्वारा प्रभु, ईश्वर की भक्ति के लिए पद, श्लोक, भजन आदि काव्य को गायन द्वारा प्रचार प्रसार कर समाज को सत्य का मार्ग दिखाने का प्रयत्न किया गया। उसी की भांति सूफी परंपरा के विभिन्न सूफी संतों एवं साधकों ने अल्लाह की इबादत और इश्क हकीकी के अनुभवों को काव्य रूप में लिखा। भक्ति आंदोलन की भांति सूफीमत परंपरा भी पूरी दुनिया के इस्लामिक देशों में फैलती गई। विभिन्न देशों से संबंधित सूफी फकीरों और कवियों द्वारा रचित सूफी काव्य प्राप्त होता है जिनमें प्रसिद्ध सूफियों संतों के नाम प्रमुख्य है। सूफियों द्वारा अरबी, फारसी, हिंदी, पंजाबी आदि भाषाओं में सूफी सहित्य लिखा गया जिसमें विभिन्न भाषाओं से सम्बन्धित कवियों या सूफी फकीरों ने अपनी रचनाएं की जैसे :

फारसी कवि – शेख अत्तार, मौलाना जलालुद्दीन रूमी, शेख सादी शिराजी, ख्वाजा शमसुद्दीन ऑफिज़, मौलाना नूरुद्दीन, अब्दुल रहमान जामी, आदि।

उर्दू कवि – वली दक्कनी, मिर्ज़ा मजहर जानजाना, शाह हातिम, ख्वाजा मीर दर्द, ख्वाजा हैदर अली आतिश, आदि।

हिंदी कवि – अमीर खुसरो, मलिक मोहम्मद जायसी, कासिम शाह, नूर मोहम्मद, शेख नासार आदि।

सूफीमत लहर के विकास के लिए जहाँ फारसी, उर्दू, हिन्दी भाषाओं में सूफी फकीरों अथवा कवियों द्वारा साहित्य लिखा गया, उसी की भांति पंजाब की सरज़मीन में पैदा हुए सूफी फकीरों द्वारा लिखित साहित्य की विशेषता इस बात का प्रमाण है कि सूफीमत विचारधारा पंजाब की संगीत परम्परा का विलक्ष्ण अंग बन गई है जिसका श्रेय पंजाब से सम्बन्धित सूफी फकीरों को जाता है जिन्होंने पंजाबी भाषा में सूफीमत विचारधारा के द्वारा अध्यात्मिक रहस्यों को विभिन्न काव्य रूपों में प्रस्तुत कर आवाम को सत्य या ईश्क हकीकी का मार्ग दिखाया। पंजाब से सम्बन्धित प्रसिद्ध सूफी फकीरों के जीवन परिचय एवं काव्यात्मक रचनाओं का वर्णन इस प्रकार है :

3.1 प्रमुख पंजाबी सूफी फकीरों का जीवन परिचय :

3.1.1 बाबा फरीद :

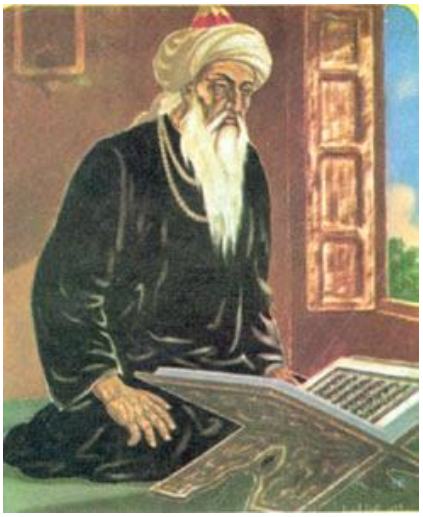

बाबा फरीद जी का पूरा नाम फरीद–उद्–दीन मसूद था। आपका जीवन जन्म सन 1173 ईस्वी में कोठवाल में हुआ आपकी माता जी करसूम धार्मिक प्रवृत्ति वाली थीं। बचपन से ही उन्होंने बाबा फरीद को अध्यात्मक रंग में रंग दिया उन्होंने छोटी सी उम्र में ही मक्का और मदीना का हज कर लिया था। अपने आरम्भिक शिक्षा कोठवाल की मस्जिद से ही प्राप्त की। इसके प्रश्चात् उच्च शिक्षा के लिए आपको मुल्तान भेज दिया गया जहाँ आपकी मुलाकात मिनहाज़–उद्–दीन तरमीज़ी की मस्ज़िद पर हज़रत कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी से हुई और फरीद जी आपके मुरीद बन गए।

फरीद जी तपस्याशील दरवेश और अनुभवी सूफी कवि थे। उन्होंने इबादत और रियाजत को अपनी ज़िंदगी का अटूट अंग बनाया आपकी काव्य रचनाओं में निमृता हलीमी, त्याग की भावना, अल्लाह की रज़ा में राज़ी रहना, सब्र, संतोष आदि प्रत्यक्ष रूप में प्रकाशमान होते हैं। फरीद जी रब्बी इबादत के वक्त मन की स्थिरता पर बल देते हैं। मन का भटकाव परमात्मा से आत्मा के साथ मेल में रुकावट बनता है। मन की धरती अगर सपाट हो जाए तो भेदभाव मिट जाते हैं और साधना का मार्ग आसान हो जाता है जिसके बारे में फरीद जी रचित काव्य संग्रह द्वारा कहते हैं कि :

फरीद मन मैदान कर टोए टिब्बे लाहि
अगै मूल ना आवसी दोजक संदी भाहि।

बाबा फरीद जी पंजाबी काव्य साहित्य की दृष्टि से पहले सूफी कवि माने जाते हैं। शेख फरीद पहले सूफी दरवेश हैं जिन्होंने फारसी जुबान में शायरी करने के साथ–साथ क्षेत्रीय भाषा यानि कि पंजाबी भाषा द्वारा भी अपने ख्यालों का इज़हार किया। उन्होंने अपने काव्य में सदाचारी आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा दी। सिक्ख धर्म के पवित्र ग्रन्थ श्री गुरू ग्रंथ साहिब में बाबा फरीद जी के 112 श्लोक

और चार शब्द संकलित हैं। यह चार शब्द राग सूही और राग आसा में उपलब्ध होते हैं। फरीद जी ने परमात्मा की निराकारता और सर्वशक्तिमानता को स्वीकारा है। बाबा फरीद इस्लाम धर्म के पैरोकार थे। आपकी वाणी सूफीवाद और इस्लाम में चिंतन के बुनियादी सिद्धांतों के साथ एकसुरता की धारणी है और श्री गुरु नानक देव जी की विचारधारा के साथ भी मेल खाती है। जिसके फलसवरूप श्री गुरु अर्जुन देव जी ने आपकी वाणी को श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित किया क्योंकि बाबा फरीद जी ने भी उस प्रभु की इबादत की विशेषता को बहुत ही सरल ढंग से अपनी रचनाओं में बांधा है। फरीद जी उस अल्लाह की इबादत के लिए प्रेरित करते हुए राग सूही में शब्द के अंतर्गत वर्णन करते हैं :

तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरउ
बावलि होई सो सहु लोरउ
तै सहि मन महि कीआ रोस
मुझे अवगन सह नाही दोस
तै साहिब की मैं सार न जानी
जोबन खोए पाछै पछतानी। (रहाओ।)

बाबा फरीद सूफी परंपरा के मूल इश्क के संकल्प को अपनी वाणी में दर्शाते हैं उनकी प्रभु प्रति इश्क की तीव्रता का अनुभव और उनकी बिरहा वेदना का वर्णन विशेषनीय है जिसके अन्तर्गत

आसा शेख फरीद जी की वाणी :

दिलहु मुहबति जिन सेई सचिया
जिन मन होर मुखि होर होर से कांडे कचिआ
रते इश्क खुदाए रंग दिदार के
विसरिया जिन नाम ते भुएं भार थीए। (रहाओ।)

उपरोक्त शब्दों में फरीद जी अंतर मन से परमात्मा के लिए प्रेम का इज़हार करते हैं कि जिन लोगों के मन में कुछ और जुबान पर कुछ और होता है उनको फरीद ने झूठे कहा है। ऐसे व्यक्ति जिनके मन में उस अल्लाह के प्रति प्रेम नहीं है, उस का हृदय एक शमशान की भांति है। उदाहरण के लिए बाबा फरीद बिरहा–वेदना को बयान करते हुए कहते हैं :

बिरहा–बिरहा आखिऐ, बिरहा तू सुल्तान
जित तन बिरहा न उपजे, सो तन जाण मसाण।

आपकी वाणी में अंकित रागों से यह अनुमान लगता है कि यह संगीत की गहरी समझ रखते थे और इसलिए उन्होंने अपने विचारों को रचित करते हुए संगीत को हमराही बनाया। फरीद जी के श्लोकों में नम्रता, मिठास का रंग, भावों का रस और प्रकृति–सौन्दर्य का बहाव है। उनके द्वारा रचित श्लोक या पद दो दो पंक्तियों में निबद्ध हैं। आपके श्लोकों में यह संक्षिप्ता का गुण गागर में सागर भरने की विशेष कला है जिसमें बाबा फरीद जी मानवता को अध्यात्म की ओर अग्रसर होने, मुरशद के दर्शन की प्यास, नम्रता, दुनिया के फानी होने आदि बातों का उल्लेख अपनी बाणी में करते हैं, उदाहरण के लिए

(1) फरीदा शकर खंड निवात गुड, माख्यों माझा दुध
सबै वस्तां मिठिआं, रब्ब न पूजन तुद।।

(2) उठ फरीदा सुत्तआ झाड़ू दे मसीत
तू सुत्ता रब्ब जागदा तेरी डाअडे नाल प्रीत।।

(3) कागा करंग ढंढोलआ सगला खाआ मास
ऐ दोए नैना मत छूहो पिर देखन की आस।।

(4) जिन्ही कम्मी नाहैं गुण ते कम्मड़े विसार
मत शरमिंदा थींहवहीं साईं दे दरबार।।

(5) कोठे मंडप माड़ीआं उसार दे भी गए
कूड़ा सौदा कर गए गोरी आए पए।।

उपरोक्त बाबा फरीद जी द्वारा रचित साहित्य सूफियाना गायन का विशेष अंग है जिसे जनसाधारण सरलता से सूफीमत विचारधारा को समझता है। बाबा फरीद जी की वाणी की यही सरलता के फलस्वरूप पंजाब प्रदेश के जनमानस को सूफियाना साहित्य के अन्तर्गत बाबा फरीद जी के श्लोक या पद् स्मरण हैं। अतः बाबा फरीद जी की वाणी पंजाबी सूफी परम्परा का आधार है जो वर्तमान में सूफियाना गायकी द्वारा सदियों से मानवता को दिशा प्रदान कर रही है।

3.1.2 शाह हुसैन :

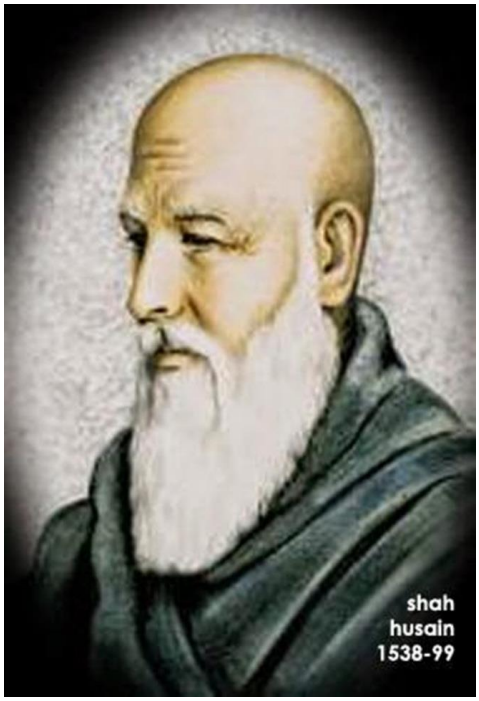

शेख फरीद जी के पश्चात् सूफी कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्धि शाह हुसैन जी की है। जहाँ फरीद जी की रचना से पंजाबी सूफी काव्य जगत का आरम्भ हुआ था, वहीं शाह हुसैन जी की कविता से यह अपनी युवा अवस्था में पहुँचा। सूफी मत अरब और ईरान आदि देशों से आया था। इसलिए इन देशों की शब्दाावली, सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव इन फकीरों की रचनाओं में प्रत्यक्ष उभरा। शाह हुसैन जी की रचनाओं में देशी शब्दावली, मुहावरे, उपमाओं, रूपक व प्रतीक का प्रयोग मिलता है। इन्होंने अपनी वैरागमई कविता से प्रभू प्रेम, संसारिक नाशवानता, निम्रता और बिरहा आदि विषयों को प्रस्तुत करके पंजाबी सूफी काव्य को शिखर तक पहुँचाया है।

शाह हुसैन जी के जन्म और उनके जीवन काल के बारे में विद्वानों में मतभेद पाए जाते हैं। परन्तु यह बात सभी विद्वानों ने स्वीकार की है कि आपका जन्म 16वीं सदी की दूसरी चौथाई में हुआ है। मौला बख्श कुश्ता ने आपका जन्म 945 हि (1538–39 ई.) बताया है और वे 63 वर्ष की आयु व्यतीत करके 1600–01 ई. में परलोक सिधार गए थे, ऐसा बताया जाता है।

आपके पिता जी का नाम शेख उस्मान था और वह जुलाहे का काम करते थे। डॉ. लाजवन्ती रामकृष्णा जी के अनुसार, ''आपके बुज़ुर्ग पहले हिन्दु थे और फिरोज़ तुगलक के समय मुस्लमान बने। इसके उपरान्त इन्होंने जुलाहे का काम करना शुरू कर दिया।''[1]

पंजाबी साहित्यकार बिक्रम सिंह घुम्मण जी अनवर बेग आवान का हवाला

1. घुम्मण, बिक्रम सिंह, शाह हुसैन जीवन ते रचना, पृ. 04

देते हुए कहते हैं कि ''शाह हुसैन दे पिता दा पेशा जुलाहिआं वाला सी। ऐसे करके ही शाह हुसैन नू 'हुसैन जुलाहा' वी आखिया जांदा सी।''[1]

शाह हुसैन जी अपने आप को जात–पात, भोदभाव आदि से ऊपर उठा कर स्वयं लोगों को ये कहा करते थे :

सब्बौ जातीं वड्डीआं, निमाणी फकीरां दी जात

आपकी रचनाओं से यह पता चलता है कि आपको संसारिक विद्या की अच्छी समझ थी, आप अच्छे पढ़े–लिखे व्यक्ति थे। आपको अरबी, फारसी और मौजूदा पंजाबी मुहावरों का भी विशेष ज्ञान था। शेख बहलोल जी आपके रूहानी मुरशिद थे। शेख बहलोल जी से पहले वह छोटी आयु में मौलवी अबूबकर जी के पास कुरान पढ़ा करते थे। आपकी तीन वर्ष की आयु में ही इन्होंने कुरान के छः भाग मौखिक रूप में समरण कर लिए और आपको हाफिज़ की पद्वी प्राप्त हो गई। इन्होंने 25–26 की उम्र में खूब ईबादत/साधना व तपस्या करके सूफी धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया और प्रभु के रहस्यमई भेदों के बारे में लोगों को बताया। 36 वर्ष की आयु में आप आज़ाद होकर मलामाती (निन्दनीय) बन गए और शराअ/शरीयत से ऊपर उठ कर नमाज़ रोज़ों का त्याग करके मुँह सिर मुण्डवाकर नाचते गाते हुए काफियाँ गाने लग पड़े। शाह हुसैन के जीवन की रिवायतों के अनुसार आपका स्नेह एक हिन्दु लड़के माधो से बढ़ने के कारण आपको माधो लाल हुसैन के नाम से भी जाना जाता है। यही माधो लाल बाद में शाह हुसैन के तकीए के कर्ता–धर्ता बने।

शाह हुसैन जी का देहांत शाहदरे (क्षेत्र) के पास रावी नदी के किनारे हुआ। आपकी मौत भी करामाती व नाटकी रंगन वाली बताई जाती है। आपके पार्थिव शरीर को रावी नदी के पूर्व की तरफ शाहदरे के पास दफनाया गया। लाहौर में भी आपकी मज़ार कायम है जहाँ हर वर्ष बसन्त का मेला लगता है। इस मेले को लोग चिराग का मेला व शालामार बाग का मेला भी कहते हैं। काव्य रचना की बात करें तो शाह हुसैन जी की काव्य रचना का आकार व रूपक पक्ष से ही महत्वपूर्ण है। आपकी 164 काफियाँ मिलती हैं। आपकी रचनाओं में सूफीमत के तीनों प्रमुख सिद्धान्तों :

---

1. घुम्मण, बिक्रम सिंह, शाह हुसैन : जीवन ते रचना, पृ. 05

(1) जीव आत्मा का परमात्मा से बिछड़ा हुआ माना जाना,

(2) परमात्मा को प्रेम भाव से प्राप्त करना व

(3) प्रभु के साथ अभेद होने की इच्छा को व्यक्त करना, आदि।

इसके अतिरिक्त आपने और भी बहुत से सूफी विचारों एवं पक्षों को वैरागमई काव्य शैली में प्रस्तुत किया है। प्रभु प्यार व भय, संसारिक नाशवानता, निम्रता और बिरहा आदि विषयों को इन्होंने सरल, सादा, व मिठास भरी बोली को सुन्दर भावों से प्रस्तुत किया है, जैसे :

शाह हुसैन जी अपनी रचनाओं में स्वयं व आत्म त्याग के ऊपर बल देते हुए लिखते हैं कि :

मेरे साहिबा मैं तेरी हो मुक्की आं
मनों ना विसारीं मैनूं मेरे साहेबा
दर तेरे दी मैं कुत्ती आं ...।

तेरा कीता मैं मन भावे, तू हैं ताणा, तू है बाणा,
कहे हुसैन फकीर निमाणा, ले बाढह कोई हरा ना जाणा।

उपरोक्त काव्य पंक्तियों के अधीन शाह हुसैन जी स्वयं को उस प्रभु परमात्मा के द्वार का मुरीद बताते हुए अपने आप को इस भांति सम्बोधित करते हुए स्वयं को बिना वजूद का कहते हैं और उस परमात्मा को सर्व शक्तिमान बताते हुए उसी की रज़ा में रहने, आदि विचार को प्रस्तुत करते हैं।

शाह हुसैन अपनी काफियों में अल्लाह को मूल शक्ति, अगम, अगोचर और सर्वव्यापक मानते हैं। अपने सूफी अनुभव अनुसार वह सब कुछ परमात्मा को ही समझते हैं और अपने काव्य में हर जगह उस अल्लाह को बिराजमान मानते हैं।

रब्बा मेरे हाल दा महरम तूं।
अन्दर तूं हैं बाहर तूं हैं, रोम रोम विच्च तूं।

शाह हुसैन जी की अपने से पहले सूफियों से अधिक प्रसिद्धि इस बात से है कि इन्होंने अपनी कविता में अपने ख्यालों को प्रस्तुत करने के लिए अपने इर्द–गिर्द के जीवन से सम्बन्धित वस्तुओं को, प्रतीकों के रूप में पेश किया है, जैसे :

जेवड़ चरखा तेवड़ मुन्ने, जेवड़ चरखा तेवड़ पच्छी,
खुड्डी दे विच जुलाही फाथी, चरखा बोलै साईं साईं, बाइड बोलै तूं
नाऊँ हुसैना ते जात जुलाहा, गालियाँ दिन्दीयां, ताणीआं वालीआं।''

शाह हुसैन जी को भारतीय संगीत की भी अच्छी मुहारत थी। इसलिए इन्होंने अपनी सारी काव्य रचना रागों में की है। आपकी रचनाओं में प्रयोग किए गए रागों में अधिक राग प्रातःकाल के दूसरे रात्रि के राग हैं।

आपकी रचनाओं में लगभग 35 राग रागाणियों का उपयोग मिलता है जिनमें आसा, भैरवी, मांझ, गुजरी, वडहंस, झंझोटी, श्री आदि राग आधारित रचनाओं को प्रस्तुत किया है। इस बात की पुष्टि करते हुए डॉ. गुरदेव सिंह जी अफज़ल परवेज़ जी का हवाला देते हुए लिखते हैं कि ''शाह हुसैन होरां वी अपने कई शब्दां दे सिरनावें रागणियां दे नावां उत्ते रखे हन। उनमें श्री राग, गाउड़ी, काफी, आसा, आसावरी, सूही बिलावल, रामकली, पर्ज, भैरव, भैरवी, बसन्त, हिन्डोल आदि राग शामिल हैं।''[1] संगीतक विशेषता होने के कारण आपकी काफियों को पंजाब के गायक कलाकारों ने संगीतक अन्दाज़ में भी गाया है और गा भी रहे हैं।

3.1.3 हाशिम शाह :

हाशिम शाह का जन्म गांव जगदेव कलां, तहसील अजनाला, जिला अमृतसर में हुआ और उनका इंतकाल थरपाल शरीफ, जिला सियालकोट (पाकिस्तान) में हुआ और यहीं आपका अंतिम समय बीता। आपके पिता हाजी मोहम्मद शरीफ और दादा माआसूस शाह कुरेशी परिवार से संबंधित थे अरब के एक प्रसिद्ध कबीले का नाम कुरैश था और हज़रत मोहम्मद भी इसी कबीले में पैदा हुए थे। जिस कारण उनको कुरैशी कहते थे क्योंकि आपके बड़े बुजुर्ग इसी कबीले में से थे। अब्दुल गफूर कुरैशी अनुसार, ''हाशम को पेशे के आधार पर तरखान का काम करने वाला कहा है और साथ–साथ पीरी, मुरीदी हिकमत, रमल और जोग आदि को भी आपके कार्य क्षेत्र में शामिल किया है।''[2] हाशम किस्साकार भी थे और सूफी भी, सूफी अनुभव के साथ उनके शबद दरियाई हकीकत (दौहड़े) और ड्यौड़ में सुने जा सकते हैं। महाराजा रणजीत सिंह के पास

1. गुरदेव सिंह, कलाम शाह हुसैन, पृ. 51
2. कुरैशी, अब्दुल गफूर, पंजाबी अदब दी कहानी, पृ. 310.

होने का कारण भी आपका सूफी अध्यात्मिक अनुभव ही है। सरदार प्यारा सिंह पदम का भी मानना है कि बुजुर्ग दरवेश होने के नाते महाराजा रणजीत सिंह भी हाशम शाह का सम्मान करते थे। इसी की भांति डॉ. मोहन सिंह दीवाना ने भी इनकी पहुँच को महाराजा रणजीत सिंह के समकालीन बताया है। मौला बख्श कुश्ता अनुसार हाशम जब जवान हुए तो उन्होंने बढ़ई का पेशा धारण कर लिया। परन्तु महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में पहुँच हो गई तो यह काम छोड़कर वहीं रहने लगे। आपके पिता हाजी मोहम्मद शरीफ एक नेक सीरत इंसान थे उन्होंने अपनी दरवेशाना शख्सियत अपने पिता हाजी माआसूस शाह से विरासत में प्राप्त की थी जो उनके दादा गोदड़ शाह जी से चली आ रही थी। इस प्रकार हाशम ने दरवेशी स्वभाव अपनी विरासत से प्राप्त किया। मौला बख्श कुशता ने आपके पिता द्वारा रूहानी शक्ति के हाशम में प्रवेश करने की कहानी को इस तरह बताया है, ''हाशिम की उम्र तब 14–15 साल की थी जब आपके पिता का इस संसार से रुखसत करने का समय पास आ गया उस समय नौकर ने हाजी साहब से निवेदन किया कि या हज़रत हाशम का भी कुछ ख्याल करना चाहिए उस समय आपके पिता जी बीमारी के बिस्तर पर पड़े ईस्बगोल की पोटली चूस रहे थे। आपके पिता ने इनको अपने पास बुलाया और वह पोटली अपने मुंह से निकालकर हाशम को दे दी और कहा इसको चूस। भगवान जाने इस पोटली में क्या जादू भरा रहसय था के जिस को चूसते ही हाशम का ज़ेहन खुल गया और यह किसी दूसरे रंग में चले गए। यह दूसरा रंग तसवुफ का रंग था।''[1] उन्होंने ज्योतिष विद्या अमीर–उल्लाह बटालवी से प्राप्त की जिनकी शोभा में इन्होंने बहुत कुछ कहा है कि मीर साहब सच बोलते थे जिस कारण उनकी बातें प्रभावशाली होती थी। वह बुद्धिमान सुंदर दयालु और धना भक्त की तरह भक्ति भाव से संपूर्ण थे उन्होंने तीन शादियां की एक रमदास, दूसरा जंडियाला और तीसरा एक ब्राह्मण की लड़की के साथ। पहले दोनों दोनों ससुराल लाहौर–मुस्लमान परिवार थे और तीसरे ब्राह्मण थे जिनकी लड़की आपकी सुरीली आवाज पर मोहित हो गई महाराजा रणजीत सिंह ने इस ब्राह्मण लड़की के साथ आपका निकाह करवाया था। माना जाता है कि हाशम महाराज रणजीत सिंह के निजी वैद्य भी थे। इसके अतिरिक्त महाराजा रणजीत सिंह हाशिम साहब की

1. कुश्ता, मौला बख्श, पंजाब दे हीरे, पृ. 104.

रचनाओं से बहुत प्रभावित थे और आपके द्वारा रचित कलामों को सुनते थे। एक बार महाराज को जब यह ड्योड़ गाकर सुनाई तो महाराजा रणजीत सिंह वज़द में आ गए ।

कामिल शौक माही मैनूं
नित रहे जिगर विच वसदा लूं लूं रसदा।
रांझण बेपरवाही करदा
अते कोई गुनाह न दसदा उठ उठ नसद।
जिओं जिओं हाल सुनावा रोवां,
वेख ततो वला हसदा जरा ना खस्दा।
हाशिम कम्म नहीं हर कसदा,
आशिक होन दरस दा, बिरहों रसदा।

एक बार जब महाराजा बीमार थे तो इसी ड्यौड़ को सुना कर उनको ठीक कर दिया और महाराज जी सिंह ने प्रसन्न होकर हाशिम शाह जी के नाम पर थरपाल में जागीर लगा दी जो वर्तमान में थरपाल शरीफ के नाम से जाना जाता है।

आपने पीरों के पीर हज़रत गौंस अल–आज़म के समक्ष दुआ, तसव्वुफ के कई पक्षों को भी अपनी रचनाओं में चित्रित किया है जैसे :

फ़कर : तुम बख्शों फ़कर फकीरों दी .....।

यही फकर हज़रत मुहम्मद ने अल्लाह पाक से मांगा था तो फकर को प्राप्त करके आप कहा करते थे कि फकर पे मुझे फख़र है। दूसरे शब्दों में फकर हर सूफी के लिए मात कर सकने योग्य प्राप्ति है।

पीर मोहम्मद मुरशद खुद अजमल वाला होता है। इसलिए वह मुरीदों को करामाती शक्ति देता है। दिलगीरों की शाद करता है और बन्दी को खलासी करता है।

पीरानि–पीरः तुम दियो करामात पीराँ नूँ।
तुम शाद करो दिलगीराँ नूँ।
तुम करो खलास अमीराँ नूँ।
या हज़रत गौंस अल आजम जी।

इश्म : किही प्रेम दी जड़ी सिर पाई,
मेरा दिल जानी खस लीता।
मिणिआं नोक सूई दे वाँगू

के मेरा दिल सोहने नाल सीता।

बेखुदी : अपनी खबर नहीं इस दिल की,
जिओं दीपक मगर अन्धेरा,
हाशम यार मिले तुध अखाँ,
असां खूब डिठा मुख तेरा।

हमाऊसत : दिल तू ही, दिलबर भी तू ही, अते वैद तू हैं,
दुख ते नींदर भुख आराम तू ही तूं,
और तै बिन जगत अन्दर,

हाशम में तड़प है, सोज है, हिजर की कसकें हैं, वसल के लिए तीव्र इच्छा है। शरीयत के बन्धनों से आज़ाद है। वह आशिकों, सादिकों के किस्से लिखता हुआ भी अपने आप की बन्दगी कर रह प्रतीत करता है।

अलिफ ओस दा कुल्ल जहूर है जी,
खलक आपणें आपणें राह पाई,
किस्सा आखणा आशिकां सादिकां (कामिलां) दां,
यह भी बन्दगी है धुरों नाल भाई।

हाशम ने रब्ब की कारीगरी को अबदी और ग़ज़ली माना है। अर्थात् वह खुदा अनादि और अन्त है। इसलिए अपनी हर किरत में नूर बन कर समाया हुआ है। हाशम के इस तथ्य का गहन अनुभव में हर सिरजता कर लेने के बाद अल्लाह की जात सृजना के अन्दर समा जाती है। हम केवल सृजना देखते हैं, सृजनहार को नहीं।

हाशम की रहस्यानुभूति ने शरीर को पोस्त और शरीर के अन्दर बैठे सृजक को दोस्त कह कर इस अति गहरे मसले को ऐसे सुलझाया है :

हर हर पोस्त दे विच दोस्त, ओह दोस्त रूप वटावे।
दोस्त तीक नांह पहुँचे कोई, यह पोस्त चा भुलावे।

रघुवीर सिंह भरत के शब्द सार्थक हैं। जब उसने हाशम को सूफी के रूप में चित्रित करके नतीजा निकाला तो हाशम अपने समय का महान सूफी कवि और रोमांचक किस्साकार है। बेशक उन्होंने अपने समय से सूफियों जैसा जीवन नहीं लिया परन्तु अपने आप में विलक्षण सूफियाना रूह के मालिक थे।

3.1.4 सुल्तान बाहू :

हज़रत सुल्तान बाहू प्रसिद्ध सूफी फकीर और कवि थे जिनकी सूफी रचनाओं में ईश्क हकीकी की रचनाओं का चित्रण विलक्षण है। आपका जन्म 1629 ईस्वी को रवाना जिला झंग पाकिस्तान में हुआ आपके पिता शायर बाज़ीद मोहम्मद थे और माता रासती–कुदस–सरा थी जो के आध्यात्मिक विचारों वाले थे। आपके बड़े बुजुर्ग अरब से आकर झंग में बसे थे। आप बचपन से ही फकीराना तबीयत के मालिक थे। इन्होंने संसारिक पढ़ाई कम की। आप पर आपकी माता जी का बहुत प्रभाव था जिस कारण उन्होंने अपनी माता जी को ही अपना आध्यात्मिक गुरु धारन करना चाहा। परंतु इस्लामी शरा के अनुसार स्त्री अध्यात्मिक गुरु या मुर्शिद नहीं बन सकती। इसीलिए इन्होंने शाह हबीबुल्लाह को अपना मुर्शिद धारण कर लिया जो कि कादरी सिलसिले से संबंधित सूफी फकीर थे। कहते हैं कि आध्यात्मिक ज्ञान में आप अपने मुर्शिद से भी आगे चले गए जिस कारण हबीबुल्लाह जी ने आपको अपने मुर्शिद सैयद अब्दुल रहमान जी की मुरीदी के लिए दिल्ली भेजा। सुल्तान बाहु उच्च कोटि के सूफी कवि थे। आपने अपने पूर्ववर्ती समकालीन सूफी रहस्यवादी कवियों के विचारों में गहरे रहस्यों और अनुभव का मिश्रण किया उन्होंने अपने आध्यात्मिक विचारों को अरबी, फारसी और पंजाबी में प्रस्तुत किया। आपकी पुस्तकों की संख्या लगभग 140 बताई गई है जिनमें कुछ पुस्तकों का अनुवाद उर्दू में हुआ मिलता है। आपकी फारसी की 50 ग़ज़लों का अनुवाद पंजाबी में हुआ मिलता है। उदाहरणार्थ :

बाहू बाज फना रब हासिल नाहीं,
ना तासीर जमाता हूं।

पंजाबी काव्य रचना में उन्होंने सीहरफीं काव्य–शैली के अंतर्गत अलग–अलग शब्दों के साथ कई काव्य पदों की रचना की। आप पंजाबी काव्य में सीहरफीं काव्य के अंतर्गत काव्य रचना करने वाले पहले कवि हैं। बाहू साहिब द्वारा रचित कलाम में 'हू' शब्द के कारण आप अलग पहचान निर्धारित करते हैं। प्रेम

मार्ग पर चलकर आत्मा और परमात्मा के मिलाप को दृष्टिगोचर करते हैं। आपकी पंजाबी रचना को छापने का सबसे पहला श्रेय फज़ल–उद–दीन लाहौरी को जाता है जिसको आबे–हयात सुल्तान बाहू के नाम से छापा गया हैं। आपकी समस्त पंजाबी रचना की विशेषता और अलग पहचान यह है कि उनकी हर एक पंक्ति 'हू' शब्द के साथ समाप्त होती है जिसका शाब्दिक अर्थ है अल्लाह के साथ मिलाप। आपने अपने कलामों में इश्क के संकल्प को बहुत ही विस्तृत और व्यापक रूप में उजागर किया है। आपकी रचनाएं इश्क हकीकी के इर्द–गिर्द घूमती हैं अर्थात् रचनाओं का मूलाधार प्रभु–इश्क है। प्रभु इश्क को आपने 'चम्बे दी बूटी' के साथ तुलना करते हुए कहा है :

''अल्फ अल्लाह चम्बे दी बूटी, मेरे मुर्शिद मन विच लाई हू
नफी असबात दा पाणी मिलिया, हर रगे हरजाई हू
अंदर बूटी मुश्क मचाया जां फुलण पर आई हू
जीवे मुर्शिद कामिल बाहू जिस एह बूटी लाई हू''

उन्होंने फ़ना की अवस्था का भी ज़िक्र अपनी काव्य कला में किया है फ़ना की अवस्था से गुज़र कर ही बका की अवस्था प्राप्त हो सकती है। आपके अनुसार कामिल फकीर बन कर ही प्रभु इश्क को हासिल किया जा सकता है। यह शरीयत की पालना करते हैं परंतु शरीयत का दिखावा करने वाले लोगों को मार्ग भी दिखाते हैं।

जे रब्ब न्हांत्यां धोत्यां मिलता, तां मिलदा ड्डुआं, मछियां हू,
जे रब्ब मिलदा मोन–मुनायां, तां मिलदा भेडां–वच्छियां हू,
जे रब्ब जतीआं सतीआं मिलदा, तां मिलदा डांडां खसीआं हू,
रब्ब ओहनां नू मिलदा बाहू, नीतां जिनां दीआं अच्छीआं हू।

सुल्तान बाहू सूफीमत के अनुसार प्रभु–प्राप्ति का सबसे उत्तम साधन इश्क–हकीकी को मानते हैं। इश्क–हकीकी के रंग में रंगा व्यक्ति रब्बी नूर द्वारा ध्रुव तारे की तरह चमकता है। बाहू साहब ऐसे इश्क–हकीकी के रंग में रंगे हुए सूफी फकीर पर अपना आप कुर्बान करने की बात को इस तरह बयान करते हैं :

ऐन इश्क हकीकी पाया मुंहों कुछ ना अलापन हूं
मैं कुर्बान तिनां दे बाहू , जो इक निगाह ते आवन हू।

उपरोक्त की गई वार्तालाप से पुष्टि हो जाती है कि सुल्तान बाहू सूफी संतों या फकीरों में अहम स्थान बनाए हुए हैं जिन्होंने सारी ज़िन्दगी आवाम को ईश्क

हकीकी का पैग़ाम दिया और आपकी रचनाओं में ईश्क हकीकी के भावों को लयात्मक ढंग से बाखूबी वर्णित किया गया है। जिसके फलस्वरूप हर व्यक्ति को बाहू साहिब की रचनाओं या कलामों को सुनते हुए सूफियाना रंगत चढ़ जाती है। इसी कारण ही सूफियाना गायन में सुलतान बाहू जी के कलाम संगीत कलाकारों और जनसाधारण में लोकप्रिय हैं जो सदियों से लेकर वर्तमान तक सूफियाना गायन में अपना विशेष स्थान बनाए हुए हैं।

3.1.5 बुल्ले शाह :

बुल्ले शाह सूफीमत विचारधारा की ऐसी शिखर हैं जिनका सूफी परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान है। बुल्ले शाह जी का वास्तविक नाम अब्दुल्लाह था अर्थात् 'अल्लाह का बंदा'। हज़रत मोहम्मद साहिब के पिता जी का नाम भी यही था। आपके पिता का नाम मोहम्मद दरवेश था जो सखी जी के नाम से भी प्रसिद्ध हुए। मोहम्मद, सखी और दरवेश तीनों नाम रुहानियत की सुगंधियों वाले हैं। साईं बुल्ले शाह जी का जन्म 1680 में गाँव पांडोंके, जिला लाहौर (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ। सखी मोहम्मद दरवेश अपने ही गांव के मदरसे में बच्चों को आरंभिक शिक्षा देते थे और आपने अपनी आरंभिक शिक्षा अपने पिताजी से ही प्राप्त की। आपको उच्च शिक्षा के लिए कसूर भेजा गया और इस्लामी शिक्षा आपने गुलाम मुर्तजा जी से ली। कसूर में पढ़ते हुए आपकी भेंट कई साधु–संतों से होती रहती जिस कारण आपके अंदर भी फकीरी की चाह लग गई। आप साधु संतों के आध्यात्मिक विचारों को सुनते और अपने अनुभव को अपनी कलम से काव्यबद्ध करते रहते। यहाँ रहते हुए आपके मन में प्रभु मिलाप की अजीब तड़प पैदा हुई। आपको कामिल मुर्शिद की जरूरत अनुभव हुई और ऐसे मुरशिद की तलाश में निकल पड़े जो आपके प्रभु मिलाप की तड़प को शांत कर दे। अतः शाह इनायत कादरी जी को आपने अपना मुरशिद बनाया। जब आप इनायत शाह कादरी जी से मिले, तब कादरी जी कांदें की पनीरी लगा रहे थे।

जब कादरी जी ने आपको पूछा कि कैसे आना हुआ, तो आपने कहा कि अल्लाह या रब्ब की तलाश में आया हूँ। तब कादरी जी बोले :

रब्ब दा की पाणा, इधरों पुटणा ते ओधर लाणा।

अर्थात् संसारिक वस्तुओं से मन को उखाड़कर, मन को अल्लाह की इबादत में लगाना है। यही बात बुल्ले शाह जी को ऐसे भाई कि आप कादरी जी के शिष्य बन गए। इनायत शाह कादरी सिलसिले का प्रतिनिधित्व करते थे। बुल्ले शाह जी अपनी ज़िन्दा–दिली, नम्रता और मन की पवित्रता के लिए प्रसिद्ध थे। आपकी विशेषता यह है कि आप अपनी रचनाओं में हर जगह मुर्शिद की उपमा और उनके प्रति श्रद्धा भाव को अधिक प्रस्तुत थे। जहां बुल्लेशाह सैय्यद घराने (अमीर परिवार) से संबंधित थे, वहीं आपके मुर्शिद अराईं (गरीब वर्ग से संबंधित) थे, जिस कारण आपको रिश्तेदारों के विरोध का सामना करना पड़ा। आप मुर्शिद के रंग में इतने रंगे हुए थे कि बुल्लेशाह जी ने लोगों के तानों की परवाह करना छोड़ दिया और वह रूहानी सफर के पथ प्रदर्शक बन गए। आपका कहना है कि :

इश्क अल्लाह दी जात लोकां दा मेंहना
केह वल करां पुकार किसे नहीं रहना ।।

आपकी रचनाओं में वेदों, कृष्ण भगवान की लीला, उनकी बांसुरी आदि का वर्णन मिलने पर स्पष्ट होता है कि आपको भारतीय धर्म, भजन भक्ति और संगीत का ज्ञान था।

हाजी लोग मक्के वल जांदे, असां जाना तख़्त हज़ार नू,
जित वाल यार उत वल काबा, भावें वेख किताबां चारे,
वृंदावन विच गउ चरावे, लंका चड़के नाद बजावे,
मक्के दा बठा हाजी जावे,वाह–वाह रंग वटाईदा ।

बुल्ले शाह ने प्रभु की सर्वव्यापकता को सारे जगत में, कुदरत के कण–कण में स्वीकार किया है।

इक लाजम बात अदब दी ए
सानू बात मलूमी सब दी ए
हर–हर विच सूरत रब दी ए
किते जाहर है किते छुपदी ए।

उन्होंने बाहरी आडंबर का खंडन अपनी रचना में किया। इससे पहले किसी भी सूफी शायर ने इतने खुले शब्दों में शरीयत का विरोध नहीं किया।

फूक मुसल्ला भनन सुट लोटा

ना फड़ तसबी कासा सोटा
ऑलम कहदें दे के होका
तरक हलालों खा मुरदार
इश्क दी नवीयों नवीं बहार....

बुल्ले शाह ने लोगों की परवाह ना करते हुए आंतरिक भावों को अपने काव्य में अभिव्यक्त किया जिस कारण आपसे आपके मुर्शिद भी निराश हो गए और आपको डेरे से बाहर निकाल दिया गया। मुर्शिद की आज्ञा का पालन करते हुए आप डेरे से तो चले गए परंतु मुर्शिद की जुदाई में आपको कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। आपने अपने पीर इनायत शाह जी को मनाने के लिए कोठे पर मुज़रा करने वाली बाई से संगीत की शिक्षा भी प्राप्त की। इश्क में मतवाले हुए उन्होंने स्त्री का भेष धारण कर किया और मुरशिद को मनाने के लिए नाचने लगे। दुनिया की परवाह न करते हुए आप अपने काव्य में कहते हैं :

कंजरी बनेयां मेरी इज्जत़ ना घटदी,
मैनू नच्च के यार मनावण दे,
बहुड़ी–बहुड़ी वे तबीबा मेंडी जिंद गईआ
तेरे इश्क नचाया करके थइया थइया।।

मस्ती में नाचना दरवेशों के धार्मिक जीवन का एक विशेष अंग है। सूफी दरवेश अपने मुर्शिद की याद में नाच–नाच कर बेहाल हो जाते हैं। बुल्ले शाह सूफी दरवेश के साथ–साथ साहित्य और संगीत के भी ज्ञाता थे। आपने अपनी आध्यात्मिक रचनाओं को विभिन्न संगीत शैलियों में कलमबद्ध किया। आपने दौहड़े, गण्डां, सीहर्फियां, अठवारां, काफियां आदि काव्य शैलियों के अंतर्गत रचनाएं रचीं। परंतु काफी काव्य रचना ने सबसे ज्यादा प्रसिद्धि हासिल की। बुल्लेशाह की कफियों में संगीतक शब्दों का वर्णन आपके संगीत के प्रति लगाव को प्रकट करता है। जब आपकी काफियों का गायन किया जाता है तो एक विचित्र सरोदी अवस्था आ जाती है। बुल्लेशाह का कलाम साहित्य उच्च आध्यात्मिक शैली और संगीत का सुमेल है। फलस्वरूप आपके द्वारा रचित ईश्क हकीकी आधारित रचनाएं सूफियाना गायकी का विशेष हिस्सा हैं जो मानवता को ईश्क हकीकी के रास्ते पर चलने और समाज की परवाह न करते हुए इबादत की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती हैं। इसी की भांति पंजाबी सूफी काव्य जगत में एक मील–पत्थर की तरह सूफी साधकों को दिशा प्रदान कर रही हैं। इस तरह सूफी फकीर बुल्ले शाह ने अपनी सारी ज़िन्दगी

आवाम को तौहीद का उपदेश देते हुए बिताई। अतः 1758 ई. में आपने इस फानी दुनिया को अलविदा कहा और कसूर में आपकी मज़ार स्थापित की गई जो आजकल पाकिस्तन में स्थित है। आपकी वफ़ात से लेकर वर्तमान तक हर मज़हब के लोक आपके मज़ार–ए–मुबारक पर जियारत के लिए आते हैं और दुआएं करते हैं जहाँ हर साल बुल्ले शाह जी के उर्स पर दूर–दूर से सूफी कव्वाल आते हैं और महफिल–ए–समां में बुल्ले शाह की काफियों को गाकर सूफियाना रंग बिखेरते हैं।

3.1.6 गुलाम फरीद :

पंजाब की सूफी परंपरा के अन्तर्गत गुलाम फरीद जी प्रसिद्ध सूफी संत और पीर हुए हैं। भले ही अकादमिक आलोचकों ने गुलाम फरीद के बारे में अधिकतर बातचीत नहीं की परंतु आपकी काफियाँ जनमानस में स्वीकार की गई हैं। 19वीं सदी में शाह आलम और गुलाम फरीद प्रमुख सूफी कवि हुए हैं। आप फारसी, उर्दू और मारवाड़ी आदि भाषाओं के प्रसिद्ध विद्वान थे आपकी शब्दावली में इन सभी भाषाओं की झलक मिलती है, मुख्य रूप से आप मुल्तानी भाषा के कवि थे। इस भाषा का जितना कुशल और कला में प्रयोग गुलाम फरीद ने किया है उतना किसी और समकालीन और पूर्व कालीन कवि ने नहीं किया।

आप सूफियों के चिश्ती सिलसिले के साथ संबंधित है। आपके पूर्वजों का सम्बन्ध फारूक आज़म, हज़रत उमर के साथ जा मिलता है। यह लोग अरब से सिंध में आए, आपके बड़े बुजुर्ग सिंध हुकूमत के उच्चतम पदों पर सुशोभित रहे, वलियों की औलाद होने, उत्तम योग्यता के कारण और उनके अच्छे व्यवहार के चलते यहां के लोगों ने इस खानदान को बहुत आदर सम्मान दिया।

गुलाम फरीद के पिता मौलाना खुदाबख्श जन्म से ही साधु स्वभाव के मालिक थे और उच्च कोटि के विद्वान हुए हैं और वे लोगों को रूहानी शिक्षा देते थे। वह रियासत बहावलपुर की तहसील खानपुर में चाचड़ा नगर (पाकिस्तान) के निवासी थे। अपने पिता की मृत्यु के समय गुलाम फरीद की आयु 8 वर्ष थी। आपके भाई फखरूदीन आयु में आपसे बड़े होने के कारण गद्दी नशीन घोषित किए गए। उन्होंने अपने पिता की भांति ही जनसमूह की सेवा की। उनके मुरीदों का दायरा दूर–दूर तक फैला हुआ था। अपने भाई के इन्तकाल उपरान्त गुलाम फरीद उत्तराधिकारी बने। पंजाबी के प्रसिद्ध विद्वान बिक्रम सिंह घुम्मन अनुसार, ''गुलाम

फरीद को अपने बड़े भाई से बहुत स्नेह था और पीर के तौर पर उनके प्रति बहुत श्रद्धा भाव था। वह उनमें और परमात्मा में कोई भिन्नता नहीं समझते थे। इसी कारण गुलाम फरीद की काफियों में कई जगह पर फखरूदीन का पूरे जज़्बे, प्यार और आदरणीय भावना से वर्णन मिलता है।''[1]

''फखरूदीन मिठल दे शौंकी, दम दम निकलम दूर।
चश्मां फखरूदीन मिठल दीयां, तन मन कीता चूर।''[2]

गुलाम फरीद का जन्म 1261 हिजरी (1841 ई.) में गाँव चाचड़ा (बहावलपुरा, पाकिस्तान) में हुआ। बचपन में आपका नाम 'खुरशीद आलम' था। आपने अपना बचपन अपने मामा जी के पास शाही तौर–तरीके में बिताया। आपने उस्ताद मौलाना कायमदीन से संसारिक और धार्मिक शिक्षा ली।

मियां मौला बख्श अनुसार, ''ख्वाजा गुलाम फरीद दिल के सखी, जुबान के मीठे और मुहब्बती, खलकत को प्यार करने वाले, नेक रूह के साथी और हर समय मजलिस में आलम–फाज़ल या मारफत के तालिब चन्द्र के गिर्द रहते थे।''[3]

ख्वाजा साहिब संगीत के भी बहुत शौकीन थे। आप बड़े ध्यान से और गम्भीरता से कव्वाली सुना करते थे। आपको हिन्दुस्तानी पक्के रागों की बहुत समझ थी। संगीत की रूचि के कारण ही आपकी काफियां संगीत रस से भरपूर हैं।

''गुजरिया वेला हसण खेलण दा, आया वक्त फरीद चलण दा,
औखा पैंडा दोस्त मिलण दा, जां लबां पर आंदी है।''[4]

गुलाम फरीद की काफियों में परमात्मा की सर्वव्यापकता, मुरशिद का महत्व, इश्क हकीकी, कुर्बानी, जीवन नाश्मानता, तौबा, साधना आदि विचारों का समावेश मिलता है।

''हर सूरत विच दीदार डिठम,
कुल यार अंगियार न यार डिठम।''[5]

इस काफी में गुलाम फरीद हर सूरत में अपने प्यारे परमात्मा के दीदार करने की बात का वर्णन करते हैं।

---

1. घुम्मण, बिक्रम सिंह (संपा.), काफियां गुलाम फरीद, पृ. 15
2. वही, पृ.16.
3. कुश्ता, मियां मौला बख्श, पंजाबी शायरों का तजकरा, लाहौर, पृ. 200.
4. घुम्मण, बिक्रम सिंह (संपा.), काफी गुलाम फरीद, पृ.19.
5. वही, पृ.22.

''अनहद मुरली शोर मचाए, गुरू ने पूरे भेद बताए,

अकल फिक्र सब फहम गमाए,
मदहोशी विच होश सिखाए,
सारा सफर अरूज सुझाए।''[1]

इसमें गुलाम फरीद जी सूफीमत के अलग अलग पड़ावों को समझाने के लिए मुर्शिद की अहमीयत को प्रस्तुत करते हैं और गुरू की शिक्षाओं के ऊपर अमल करने की नसीहत देते हैं।

आपकी काफियों की लोकप्रियता इस बात का प्रमाण है कि सूफियाना रंग में आपकी काफियों को बड़े श्रद्धाभाव सूफियाना रंग में आपकी काफियों को बड़े श्रद्धाभाव से गायन किया जाता है।

उपरोक्त की गई वार्तालाप से यह स्पष्ट हो जाता है पंजाब से सम्बन्धित सूफी फकीरों ने पंजाबी भाषा में ईश्क–हकीकी के रहस्यों को इतनी सरलता से काव्यबद्ध किया है जिससे साधारण जनमानस आसानी से समझ सके और इसके अतिरिक्त विभिन्न काव्य रूपों को संगीतक रूप में निबद्ध करके अपने अध्यात्मिक रहस्यों को प्रस्तुत किया है जिससे सूफी फकीरों की संगीत और साहित्य के बोध की पुष्टि होती है। परिणामस्वरूप पंजाब में सूफीमत विचारधारा विकसित हुई और वर्तमान में सूफी परम्परा सूफियाना गायन के रूप में भारतीय संगीत का विशेष अंग बन चुकी है और सूफियाना गायन के अन्तर्गत विभिन्न संगीतिक शैलियों के रूप में लोकप्रिय हैं।

3.2 सूफी संगीत की विभिन्न शैलियाँ :

संगीत कला विश्वव्यापी कला है जो पूरी दुनिया को अपनी स्वर लहरियों से रंजित करती हुई प्राचीन काल से विभिन्न कालन्तरों में परिवर्तित होती हुई वर्तमान में भी प्रवाहमान है। भारतीय संगीत के अंतर्गत परंपरागत संगीत की शैलियों का इतिहास है जिसका वर्णन पीछे दिया जा चुका है इसके अतिरिक्त भारतीय संगीत परंपरा में हर जाति या धर्म ने विशेष भूमिका निभाई है जिसके फलस्वरूप संगीत की विभिन्न विधाएं प्रचार में आई क्योंकि हर एक जाति धर्म की अपनी भाषा,

1. घुम्मण, बिक्रम सिंह (संपा.), काफीयां गुलाम फरीद, पृ.22.

सिद्धांत, विशेषताएं रहती हैं इसी कारण हर जाति या धर्म के लोगों के साहित्य में भिन्नता पाई जाती है और जब उस साहित्या को संगीतबद्ध कर समाज में प्रचारित किया जाता है तो अपनी विलक्षण पहचान दर्शाता है इसी की भांति सूफी संगीत भी इस्लाम धर्म से संबंधित सूफी फकीरों की देन है और जिसकी विभिन्न संगीत शैलियां प्रचार में आई जिसका निम्नलिखित वर्णन है इस प्रकार हैः

3.2.1 कव्वाली :

कव्वाली सूफी संगीत की विशेष विलक्षण शैली है जिस तरह भारतीय संगीत में भजन संगीत अपनी विशेष महत्त्व रखता है उसी तरह सूफियों में कव्वाली भक्तिमई गीत है जिसे सूफियाना नगमा या गीत कहा जाता है जिसका गायन उस अल्लाह या ईश्वर की याद में सूफी खानकाहों और दरबारों में किया जाता है जिसे सूफी फकीरों की महफिल या महफिले समाअ भी कहा जाता है

उर्दू हिंदी कोश में, ''कव्वाली को अरबी लफज बताया है और इसका अर्थ है वे इस्लामी गाने जो मजारों आदि पर गाए जाते हैं हक्कानी गाने।''[1]

अचार्य बृहस्पति जी लिखते हैं, ''कॉल का अर्थ कथन, वचन, बात, प्रवचन, प्रतिज्ञा या विशिष्ट उक्ती है कॉल को गाने वाला कव्वाल है। कवालों की गायन शैली कव्वाली और कवालों की गायन शैली में गाई जाने वाली ग़ज़लें ही गेय रूप में कव्वाली कहलाती हैं। कव्वाली में तान पलटा जमजमा बोलबांट सभी कुछ होता है प्रसिद्ध ख्याल गायक उस्ताद तानरस खां बहुत अच्छे कव्वाल थे ग़ज़लों को एक विशिष्ट शैली में गाने वाले कव्वाल सूफियों के साथ सदा रहा करते थे।''[2]

भाई कान सिंह नाभा अनुसार, ''कव्वाली सूफियों की महफिल में गाई जाने वाली सूफियों की गायन शैली है इस बात का मूल आधार कॉल है।''[3]

कव्वाली गायन में मुरीद अपने मुर्शिद पर सब कुर्बान करने का ज़िक्र करता है कि मुरीद का मुर्शिद ही सब कुछ है और जिन मुरीदों ने अपने मुर्शिद के साथ किए हुए कॉल वचनों वादों को निभाया है उन्हीं कॉलों के गायन रूप को कव्वाली कहा जाता है। कव्वाली ईरान से भारत में आई भारत में प्रवेश करने से पूर्व कव्वाली फारसी भाषा में ही उपलब्ध थी लेकिन भारत में आने पर कव्वाली भारतीय

1. मदाह, मोहम्मद मुस्तफा खां, उर्दू–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 9
2. बृहस्पति, आचार्य, संगीत चिंतामणि, पृ. 74
3. नाभा, भार्इ काहन सिंह, गुरूशब्द रत्नाकर शब्दकोश, पृ. 1046

भाषाओं में भी प्रचार में आने लगी क्योंकि सूफी संतों को सूफीमत के प्रचार के लिए साधारण लोगों की भाषा को अपनाना जरूरी था जिसके फल स्वरूप फारसी और भारतीय भाषाओं का मिश्रण होने लगा क्योंकि संगीत के माध्यम से साधारण लोगों को सूफी फकीर अपनी ओर आकर्षित कर सकते थे। अतः कव्वाली का प्रचार–प्रसार होने लगा। कवाली की विशेषता यह है कि उसमें अरबी, फारसी और उत्तरी भारतीय संगीत का अच्छा मिश्रण हुआ है।

कव्वाली के लिए कल्ब शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। कल्ब से भाव मन की पवित्रता से है। कल्ब आतमा की वह स्थिति है जो बुद्धि से संबंधित है जो रूह और नफस के बीच की स्थिति है

बालकृष्ण गर्ग जी अनुसार, ''कलब के प्रति समर्पण की भावना ने कौल को जन्म दिया और कौल को गाने वाले कव्वाल कहलाए। कवालों की गायन शैली होने के कारण ही कौल को कवाली कहा जाने लगा।''[1]

इसी प्रकार श्री वी के स्वामी जी के अनुसार कौल शब्द अरबी भाषा का है किंतु कवाली शब्द उर्दू का है कवाली का जन्म उसी समय हुआ था जब विभिन्न भाषाओं से शब्द संग्रहित करके उर्दू भाषा अपना निर्माण कर रही थी। कव्वाली गायन में भाषाओं का संग्रह होने के कारण इसकी लोकप्रियता बनी और भारत के हिंदू समाज ने भी अपनाया क्योंकि भारतीय लोगों को अरबी फारसी का ज्ञान ना होने के कारण सूफी संत संतों द्वारा हिंदी भाषा का सहारा लेना आवश्यकता था

इसी मत की पुष्टि आचार्य बृहस्पति जी अनुसार, ''कॉल और कव्वाल शब्द भले ही भारतीय भाषाओं के ना हों, परंतु कव्वाल शब्द के बाद 'ई' प्रत्यय लगाकर कवाली शब्द हिंदी व्याकरण के अनुसार ही बना है किसी भी अरबी या फारसी शब्दकोश में कव्वाली शब्द ना मिलेगा।''[2]

''सूफी फकीरों को मधुर स्वर में नाअत और कव्वाली (अल्लाह और पैगंबर आदि की स्तुति और प्रशंसा) सुनने का शौक था। दूसरे यहां के निवासियों को

1. गर्ग, बालकृष्ण, संगीत, कवाली अंक, जनवरी'–फरवरी 1979, पृ. 15
2. बृहस्पति, आचार्य, संगीत, मुस्लमान और भारतीय संगीत अंक, पृ. 68

आकर्षित करने के लिए और अपनी धार्मिक विचारों से उन्हें अवगत कराने के लिए भारत की भाषाओं में भी कव्वाली गायन का आरंभ हुआ।''[1]

शुरुआती दौर में कव्वाली गायन केवल सूफी फकीरों की दरगाहों पर खुदा की इबादत, उसकी रजा आदि विषयों पर आधारित होती थी परंतु मध्यकाल में धीरे–धीरे यह शैली राज दरबारों में आ गई और समय कालांतर से कवाली गायन ने लोकप्रियता हासिल की और ग्रामोफोन रिकॉर्ड के माध्यम से कव्वाली का व्यापक प्रचार हुआ इसके अतिरिक्त चलचित्र और आकाशवाणी के माध्यम से कव्वाली ने बहुत अधिक लोकप्रियता हासिल की। फलस्वरुप कवाली दरगाहों से निकलकर निजी महफिलों,शादी विवाह एवं अन्य अवसरों पर श्रोतागनों को रंजित कर रही है इसके साथ ही विश्वविद्यालयों में कव्वाली गायन के लिए छात्र प्रस्तुतियां देते हैं कव्वाली गायन की लोकप्रियता से ही कव्वाली वर्तमान में दो रूपों में प्रवाहित हो रही है –

क) साधारण कव्वालीः

इस तरह के गायन में कव्वाली का विषय जनसाधारण मनोरंजन के लिए होती है जिसमें श्रृंगारिक्ता, नायक, नायिका आदि को आधार बनाकर कभी भी किसी समय गायन किया जाता है इस तरह के कव्वाली गायन में एक मुख्य और कुछ सहायक कलाकार होते हैं।

ख) आध्यात्मिक कव्वाली विशेष या खास कव्वाली :

इस कव्वाली गायन का विषय इश्क हकीकी भाव खुदा की इबादत का ज़िक्र होता है। इस कव्वाली का गायन सूफी दरगाह या उर्स के मौके पर किया जाता है और फारसी या ब्रज भाषा का प्रयोग विशेष रहता है। कव्वाली के आरंभ में चादर गाई जाती है, उसके बाद कॉल और अंत में रंग का गायन किया जाता है जिसमे हज़रत अली साहब का कॉल विशेष रूप गायन किया जाता है जैसे मन कुंतो मौला और कव्वाली गायन की गति को धीरे–धीरे आगे बढ़ाया जाता है कव्वाली गायन में कम से कम 7 और ज्यादा से ज्यादा 14 कलाकार होते हैं एक अथवा दो मुख्य कलाकार होते हैं और शेष कलाकार उनके द्वारा उचारित टुकड़ों अथवा पंक्तियों को दोहराते हैं और ताली बजा कर संगत करते हैं एक चरण की पुनरावृति के द्वारा

1. पैंतल, गीता, पंजाब की संगीत परम्परा, पृ. 18–19

उस चरण से संबंधित विभिन्न पंक्तियां भी गाई जाती हैं। पहले कव्वाली गायन ज्यादातर तार सप्तक में सीधी स्वरावलियों अथवा तानों के साथ होता था लेकिन वर्तमान युग में पदों के टुकड़े को लेकर छोटी–छोटी मुरिकियों, तानों अथवा खटकों से सजाने की प्रथा चल पड़ी है साथ में तराने के बोल भी शामिल कर लिए जाते हैं इसके अतिरिक्त कव्वाली में तान पलटा जमजम बोलबांट आदि सब कुछ होता है कव्वाली के 10 अंग माने जाते हैं अस्तुत, हम्द, नाअत मनकबत आरफाना वहदानियत तौहीद रिंदाना आशिकाना और आवामी। जिनका गायन विभिन्न जुबानो या भाषाओं में किया जाता रहा लेकिन अब प्रचार में केवल 3 ही अंग है नाअत, मनकबत और आशिकाना यह ही प्रमुख गाए जाते हैं अंतः कव्वाली सूफियाना संगीत की लोकप्रिय विधा है जो अपने आरंभिक काल से लेकर वर्तमान तक सूफियाना संगीत का प्रचार प्रसार मुख्य शैली के रूप में कर रही है।

3.2.2 कॉल :

एक कथन अनुसार वह फारसी गीत जो गायन के लिए लिखे जाते थे और वह रुबाई के वजन के होते थे उनको कॉल कहा जाता है।

डॉ रोशन लाल आहूजा कॉल के बारे में विचार देते हुए लिखते हैं ''सूफियों की मजलिस में रूबाई के वजन के गीत गाए जाते थे गाने वालों को कव्वाल उनके गीतों को कव्वाली कहते थे और रूबाईयों को ही कॉल कहते थे।''[1]

ईरानी साहित्य के नजरिए से रूबाई के अंतर्गत आने वाली छंद प्रबंध जैसी रचना को ही कॉल कहा जाएगा।

आज के संदर्भ में बात की जाए तो ज्यादातर कव्वाल कॉल को कव्वाली का हिस्सा मानते हैं वह हज़रत मोहम्मद के वचनों को कॉल मानते हैं और उनके वचनों को वह तबले की ताल में मध्य लय के ठेके में या बिना ताल कव्वाली के शुरुआती शेयर की तरह गाते हैं इस प्रकार जो धुन कव्वाली के लिए उपयोग होती है उसी धुन के स्वरों में कॉल को भी गाया जाता है जो वाद्य कव्वाली के लिए उपयोग होते हैं वही वाद्य कॉल के साथ बजाए जाते हैं।

3.2.3 हमद :

कव्वाली गायन में हमद गायन द्वारा सबसे पहले खुदा की तारीफ की जाती

---

1. अहूजा, रौशन लाल, अकादमिक आलोचना, पृ. 34

है। हमद फारसी भाषा का शब्द है एवं फारसी काव्य रूप है। जिसे हमद या हमद–ओ–सना भी कहा जाता है। इस्लाम धर्म की मान्यता अनुसार कुरान शरीफ में दर्ज पूरा ज्ञान अल्लाह के द्वारा नजर आया है। कुरान अल्लाह की ही आवाज है जिसके अंतर्गत फारसी, अरबी और उर्दू भाषा में हमद की रचना सुनने को मिलती है। उदाहरण के लिए :

1) तेरे ही नाम से हर इब्तिदा है
तेरे ही नाम से हर इन्तेहां है
तेरी हम्द–ओ–सनाअ अल्हम दो लिल्लाह
कि तू मेरे मुहम्मद का खुदा है।

2) तेरी शान–ऐ–करीमी तो जावां सदके
तू ही सब ते करम कमोअन वाला
पत्ते–पत्ते ते मौला है राज़ तेरा
पत्थर अन्दर कीड़े नू रोज़ी पहुँचौण वाला।

सूफी गायक कवाल, कव्वाली गायन करते समय हमद से ही कव्वाली गान का आरंभ करते हैं।

3.2.4 नाअत :

जिस काव्य रूप में हज़रत मोहम्मद साहब की प्रशंसा की जाती हो उस काव्य रूप को नाआत कहते हैं उर्दू हिंदी डिक्शनरी के अनुसार ''हज़रत मोहम्मद साहब की छंदोबद्ध उस्तत को नाआत बताया गया है।''[1]

पंजाबी सूफी साहित्य संदर्भ ग्रंथ में डॉक्टर गुरुदेव सिंह ने नाअत के अर्थ को समझते हुए लिखा है कि ''तारीफ सिफ्त विशेष तौर पर हज़रत मोहम्मद के गुणगान के लिए यह शब्द निश्चित हो गया है, अर्थात नाअत ए रसूल मकबूल (पैगंबर प्यारे की कीर्ति)।''[2]

उर्दू फारसी और अरबी की रचनाएं जिसमें विशेष अल्लाह पाक की स्तुति का गायन किया गया हो अल्लाह को नाआत में शामिल किया जाता है जिस प्रकार

1. मदाह, मो.मुस्तफा खां, उर्द–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 346
2. गुरदेव सिंह, पंजाबी सूफी सन्दर्भ ग्रंथ, पृ. 211

पंजाब में शब्द और हिंदी में भजन हैं उसी प्रकार अरबी में नाअत को धार्मिक गीत भी कहते हैं जिसमे हज़रत सल्ले अल्लाह मुसलसल की प्रशंसा का विशेष ध्यान रखा जाता है।

पंजाबी साहित्य कोश के अंतर्गत ''मुसलमान देशों में और इस्लामी धार्मिक इकट्ठठो मजलिसों तथा अरदास इत्यादि में नाआत गाए जाने की प्रथा है।''[1] नाअत कोई छंद का भेद ना होकर दोहा, चौपाई, कबित या रूबाई किसी भी शक्ल में हो सकती है, इसका उपयोग पंजाबी हिंदी सूफी साहित्य की बजाय अधिकतर अरबी और फारसी शायरी में ज्यादा मिलता है।

सूफियाना कव्वाली में सबसे प्रथम हमद गाया जाता है फिर नाअत शरीफ गाया जाता है उसके उपरांत कॉल और फिर क्वाली की बंदिश शुरू की जाती है हज़रत जामी की एक फारसी नाअत को नमूने के तौर पर प्रस्तुत किया है

1) **फारसी नाअतः**

नसीमा जानिबे बतहा गुजर कुन,
जे अहवालम मोहम्मद रा खबर कुन।
तूई सुल्ताने आलम या मोहम्मद,
जेरूए लुत सूए मा नजर कुन।
बब्बर ई जाने मुश्ताकम दरआँ जो,
फ़िदाए रौज़ाए ख़ैरूलबशर कुन,
मुर्शरफ गरचे शुद 'जामी' जे लुतफत,
ख़ुदाए ई करम बारेदिगर कुन– हज़रत जामी

2) –या खुदा जिस्म में जब तक मेरे जान रहे
तुझ पे सदके तेरे महबूब पे कुरबान रहे
कुछ रहे या न रहे पर ये दुआ है कि अमीर
निज़ा के वक्त सलामत मेरा ईमान रहे

3) –सोणया तो सोणा मेरा नबी,
प्यारायां तो प्यारा मेरा नबी।

नाअत के गायन को नाअत ख्वान या सनाअ खवान कहते हैं। इसका गायन वाद्यों के बिना भी किया जाता है और कई गायक लय के लिए वाद्य का उपयोग भी करते हैं। नाअत गायकों को नाअत खवाजी या सनाअ खवाजी कहा जाता है।

---

1. प्रेमी, गुरदित सिंह, पंजाबी साहित्य कोश, भाग–1, पृ. 313

3.2.5 मनकबत :

सूफी संतों की उपमा में रची गई रचना को मनकबत कहते हैं। मनकबत को नाअत के पश्चात् गायन करने की परंपरा है अमीर खुसरो द्वारा हज़रत अली की उपमा में रचित मनकबत (मन कुंतो मौला) बहुत प्रसिद्ध है जिसका गायन आज भी किया जा रहा है

मुखड़ा : मन कुंतो मौला फअली उन मौला,
दारा तेले दारा तेले दिर दानी मन।
अन्तरा : हम तुम ता ना ना ना ना ता ना ना ना रे,
यलाली या ला ली याला ले या ला ले या
ला ला ला या ला ला ला या ला ला ला रे मन।

3.2.6 कल्बाना :

कल्बाना कौल की भांति सूफियाना गायन का प्रकार है। कौल अरबी भाषा और तराने का सुमेल है जबकि कल्बाना में अरबी और हिन्दी भाषा के साथ तराने के शब्दों का समावेश रहता है। कल्बाना गायन शैली में विभिन्न तालों का प्रयोग किया जाता है जिसके फलस्वरूप कल्बाना को ताल सागर से संबोधन किया जाता है। हज़रत खुसरो द्वारा रचित कल्बाना निम्नलिखित है :

स्थाई : लकद सकदा कौलहुत आला भेजो दुरूद ओ सलाम।

अंतरा : अमीर खुसरो बल–बल जावें

हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के दरबार गावें

3.2.7 रंग :

रंग गायन शैली का वह रूप है जो अमीर खुसरो को श्रद्धांजलि अर्पित करने के रूप में कुछ विशेष पद के रूप में कव्वालियों के आयोजन की समाप्ति पर गायन किया जाता है। सूफी दरवेश की दरगाह पर उसके कुछ ना कुछ चुने कवाल होते हैं इंन कवालों के छोटे–छोटे दलों के लिए चौकी शब्द प्रचलित है। जब कभी किसी मजार पर चादर चढ़ाने के समय उस दरगाह और दूसरी दरगाह से आए कव्वाली के समूह जिन्हें चौकियां कहा जाता जब मिल जुलकर जो विशेष गायन गाते हैं उसे रंग कहते हैं मिसाल के तौर पर ''आज रंग है री मां रंग है री''।

खुसरो रैन सुहाग की, मैं जागी पी के संग,

तन मोरा मन पीआ का, अब दोनों एक ही रंग,
माटी के तुम दीवरे, सुनो हमारी बात,
आज मिलावड़ा पीआ का, तुम जागिओ सारी रात।

3.2.8 काफी :

क्वाली की तरह काफी सूफी संगीत की लोकप्रिय गायन शैली है क्योंकि सूफियों ने अपने अनुभवों को सबसे ज्यादा काफी साहित्य के रूप में लिखा है जो सूफी फकीरों की विभिन्न आध्यात्मिक मंजिलों को बयां करती है अथवा खुदा की इबादत संबंधित बातों का जिक्र हमें काफी शैली के साहित्य में प्राप्त होता है

काफी शब्द अरबी भाषा से प्रचार में आया जिसका भाव है अनुसरण करना यानी पीछे–पीछे चलने वाला।

उर्दू हिंदी शब्दकोश अनुसार ''आवश्यकता के अनुसार बहुत ज्यादा''[1],

पंजाबी साहित्य कोश अनुसार, ''बेन्याज करन वाला, ज्ञानवान जरूरत पूरी करने वाला।''[2]

प्रिंसिपल तेजा सिंह के अनुसार, ''ए कोई खास छंद नहीं आते ना ही छंदबंदी दी कोई खास जाता है जिस दीयां मात्रा अते रुप किसे नेम हेठ बन्नीयां जा सकदियां होण, काफी दा मायना वार वार आऊना है, जद सूफी फकीर प्रेम रस भरे पद गौण लई अखाड़ा रचदे हन ता एक मुख्यिॉ अगे अगे उच्ची आवाज नाल रब दे प्यार विच लीन होआ गौंउदा है अते बाकी दे सिर हिला हिला के ताल दिदें हन बस इक दे पिछे रल के गई जान वाली धारना दे गीत नू काफी कहदें हन।''[3]

''काफी एक सरोदी रचना है जो कवी गौण लई रचदा है, इह किसे वी राग विच गाई जा सकदी है ते इसदे लई कोई छंद नियम लागू नहीं कीता जा सकदा। इह कई प्रकार दे छंदा विच रची जा सकती है पर ताल बद्ध अते छंदबद्ध हुंदेआं इसदा संगीतबद्ध होना वी जरूरी है।''[4] यानी दोहो की भांति सूफी फकीरों का ऐसा साहित्य जिसका गायन साधारण लोगों द्वारा भजन संगीत की भांति एक मुखीये के पीछे पीछे गायन करना काफी गायन कहलाता है।

---

1. मदाह, मोहम्मद मुस्तफा खां, उर्दू–हिन्दी शब्दकोश, पृ.115
2. पंजाबी कोश, भाग–1, भाषा विभाग,पंजाब, पृ. 221
3. तेजा सिंह, साहित दर्शन, पृ. 136
4. सुरिन्दर सिंह, चौणवीयाँ काफियाँ, पृ. 3

मध्यकाल में अध्यात्मिक विचारों को प्रस्तुत करने के लिए सूफी फकीरों ने काफी रूप में साहित्य की रचना की। हिंदू समाज ने अपने प्रचार के लिए भजन ,सिख धर्म के प्रचार हेतु गुरमत साहित्य, ऐसे ही सूफी फकीरों ने काफी गीत शैली द्वारा अल्लाह की इबादत का संदेश दिया। इन काफियों के माध्यम से सूफी फकीरों ने मनुष्य को प्रेमिका के रूप में चित्रित करते हुए ईश्वर अल्लाह रुपी पति की रजा में रहने, उससे प्रेम करने हमेशा समर्ण करने का जिकर अपनी काफियों में किया और इस साहित्य को लोकप्रिय बनाने हेतु सामाजिक प्रेम कथाओं के नायक नायिकाओं की भांति पात्रों का काफी साहित्य में प्रयोग किया :

रांझा रांझा करदी नी मैं आपे रांझा होई
सदो नी मैंनू धीदो रांझा हीर ना आखो कोई।

काफी रचनाओं में विभिन्न सूफी फकीरों ने साहित्य रचना की और सबसे पहले काफी रचनाओं के लिए शाह हुसैन का नाम आता है जिन्होंने आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करते हुए अपनी व्याकुलता को इस प्रकार बयां किया :

''रब्बा मेरे हाल दा महरम तूं। रहाओ
अंदर तू है बाहर तू हैं रोम रोम विच तूं
कहे हुसैन फकीर निमाणा मैं नाही सब तूं''[1]

मन अटकेआ बेपरवाह दे नाल
उस दीन दुनी दे शाह दे नाल

इसी तरह सूफी फकीर साईं बुल्ले शाह ने भी अपने मुर्शिद के बिछडने से व्याकुल होकर नाच गाना सीखा और समाज की परवाह न करते हुए कहा

–''तेरे इश्क नचाया करके थईया थईया
छेती बहुड़ी वे तबीबा नई ते मैं मर गईयां।।''[2]

–मैं तेरे कुर्बान वे वेहड़े आ वड़ मेरे
जानू तू भांवे ना जान वे वेहड़े आ वड़ मेरे
शाह इनायत साईं मेरे, मापे छोड़ लगी लड़ तेरे
लगीयां दी लज जान वे वेहड़े आ वड़ मेरे।।

उपरोक्त लिखित सूफी फकीरों की काफियों से पुष्टि होती है कि किस तरह सूफी फकीरों ने अपने मूल शब्द को अपना सर्वत्र मानते हुए अपनी हर बात को

1. जग्गी, रतन सिंह, खोज पत्रिका, पृ.166
2. घुम्मण, बिक्रम सिंह, काफियाँ बुल्ले शाह, पृ. 5

साहित्य और नाचने गाने के माध्यम से प्रस्तुत किया इसी तरह विभिन्न सूफी फकीरों ने काफी साहित्य की रचना की। ऐसे तो काफी साहित्य को किसी भी राग की स्वरावलियों में गा लिया जाता है बहुत सी काफीआं हमे राग आधारित भी प्राप्त होती हैं। काफी गायन की लोकप्रियता फल स्वरुप ही विभिन्न स्थानों से संबंधित काफियां प्रचार में आई जिसके अंतर्गत मुल्तानी काफी पहाड़ी काफी सिंधी काफी पंजाबी काफी। काफी गायन के विभिन्न प्रकार विभिन्न क्षेत्रों के भाषांतर के कारण हैं पंजाबी काफी मुल्तानी काफी और सिंधी काफी का पंजाब में ज्यादा प्रचलन है। मुल्तानी काफी और सिंधी काफी में भाषा का अंतर रहता है इसके साथ ही पंजाबी काफी में पंजाब प्रांत के लोक संगीत की झलक दिखाई देती है क्योंकि सूफी फकीरों ने लोक संगीत से प्रेरित होकर ही साधारण जनता में काफी साहित्य को संगीतबद्ध कर प्रचार किया। इसी की भांति काफी में वादन रूप में बजने वाले तालों के अतिरिक्त काफी से संबंधित वादन या ठेके का प्रयोग वादन में होता है।

काफी गायन को हरेक विधा के संगीतज्ञ ने अपनी प्रस्तुति का हिस्सा बनाया जिसमें शाम चौरासी घराने के प्रसिद्ध उस्ताद सलामत अली खान साहब की काफीयां हमें सुनने को मिलती हैं इसके अतिरिक्त लोक सगीत गायक कलाकार भी काफी गायन को अपने प्रस्तुति का हिस्सा बनाते हैं। काफी गायन की विशेषता है कि काफी गायन को आप शास्त्री अंग से भी गायन कर सकते हैं और सुगम संगीत अंतर्गत भी गायन कर सकते हैं इसके अतिरिक्त ऐसी काफीयां भी सुनने को मिलती हैं जिसको काफी शैली में भी और कव्वाली विधा अनुसार भी गायन किया जाता है जो काफी शैली की कोमलता को प्रकट करती है ।

अतः सूफी फकीरों द्वारा रचित काफी साहित्य अपनी विभिन्न तरह की विशेषताओं के कारण काफी शैली के रूप में सूफी संगीत का अभिन्न अंग है जिसने सूफी संगीत के प्रचार प्रसार में अहम भूमिका निभाई है।

3.2.9 ग़ज़ल :

ग़ज़ल फारसी का शब्द है जिसका अर्थ प्रेम प्रधान गीत है। ग़ज़ल काव्य रूप को प्रचलित करने में ईरानी कवियों का बहुमूल्य योगदान रहा है जिन्होंने अरब की शायरी को सवांर के कई देशों में इसका प्रचार प्रसार किया। इस काव्य रूप का आरंभ अरब के लोक संगीत से होता हुआ मिसर और भारत आदि देशों में

प्रचारित हुआ। ''ग़ज़ल 11वीं शताब्दी से बहुत पहले अपना स्वतंत्र रूप धारण कर चुकी थी। फारसी शायरी के दानी रुदकी के समय में ग़ज़ल विकसित हो चुकी थी। रुदकी ने कसीदा, ग़ज़ल, रुबाई, मसनवी आदि सभी रूपों में सिद्हस्ता हासिल की।''[1]

ग़ज़ल की उत्पत्ति कसीदे से मानी जाती है अरब में हर शायर अपनी उपजीविका के लिए या अपनी नौकरी के लिए अपने राजे महाराजाओं की प्रशंसा में कसीदे कहकर धन–दौलत और वाह वाह बटोरते थे, कसीदे के एक रूप में कवी प्रायः अपनी प्रेमिका की प्रशंसा करता था या उसके वियोग में रचना करता था। इस रूप को बाद में कसीदे से अलग कर दिया गया तो वह अलग रूप ग़ज़ल काव्य रूप बन गया, अगर ग़ज़ल और कसीदा काव्य रूप में अंतर निर्धारित करना हो तो यह कह सकते हैं जिसमें किसी विशिष्ट व्यक्ति की न्याय प्रियता उदारता आदि की प्रशंसा की गई हो वह कसीदा है और जिस काव्य रूप में प्रेम संबंधी सौंदर्य को प्रस्तुत किया गया हो वह ग़ज़ल है।

मतला, हुस्न–ए–मतला (शेयर) और मुक्ता ग़ज़ल के तीन भाग हैं। ग़ज़ल का पहला शेयर मतला होता है मतले के बाद आने वाले शेयर को हुसन–ए–मतला कहते हैं । एक ग़ज़ल में कई बार एक से अधिक मतले भी आ जाते हैं जिसको मतला–ए–साअनी कहते हैं। ग़ज़ल के आखरी शेयर को मख्ता कहा जाता है जिसमें शायर अपनी पहचान के रूप में अपना उपनाम लिखता है इसे ग़ज़ल का विशेष गुण समझा जाता है।

काव्य रूप के आधार पर ग़ज़ल के प्रकार को निर्धारित करते हुए ग़ज़ल के दो प्रकार माने जाते हैं 1. मुसल्सल ग़ज़ल, 2. गैर मुसल्सल ग़ज़ल। मुसल्सल ग़ज़ल में शेयर एक दूसरे से संबंधित होते हैं और एक ही विषय को प्रकट करते हैं ऐसी ग़ज़लों की मात्रा फारसी साहित्य में कम है। गैर मुसल्सल ग़ज़ल में हर शेयर अपने आप में मुकम्मल होता है, एक शेयर का दूसरे शेयर से कोई ताल्लुक नहीं होता इस प्रकार की गैर मुसलसल ग़ज़लों के हर शेयर का अपना विषय होता है।

विचारधाराई पक्ष के आधार पर ग़ज़ल के दो प्रकार होते हैं :

क) ग़ज़ल ख) सूफी ग़ज़ल।

---

1. बत्रा, श्रीनिवास, हिन्दी और फारसी सूफीकाव : तुल्नात्मक अध्ययन, पृ. 45

क) **ग़ज़ल :** इस ग़ज़ल के अंतर्गत उन ग़ज़लों को लेते हैं जिसमें प्यार मोहब्बत या प्रेम प्रेमिकाओं के वार्तालाप का वर्णन होता है, इस तरह के ग़ज़ल के काव्य रूप में इश्क के जज्बातों को सच्चाई और असरदार तरीकों के साथ जाहिर किया जा सके ऐसी नजरों को इश्क मिजाज़ी ग़ज़लों की श्रेणी में रखा जा सकता है इश्क मिजाज़ी से भाव दुनियावी प्यार से है।

ख) **सूफी ग़ज़ल :** सूफी ग़ज़ल या सूफियाना ग़ज़ल से भाव जिसमें परमात्मा के प्रति प्रेमभाव को एक रूहानियत भरी अदायगी में प्रस्तुत किया जाता है जहां पर आम ग़ज़लों में श्रृंगार या करुणा रस प्रधान होता है वही सूफियाना ग़ज़लों में अध्यात्म रस अधिक होता है इस प्रकार की ग़ज़लें मनोरंजन भाव की ना होकर एक बंदगी/इबादत वाली होती हैं। अगर इतिहास में नजर डाली जाए तो ''भारतीय संगीत को यह सूफियों की देन माना जाता है।''[1] ग़ज़ल शैली का प्रसार करने में सूफी संतों का विशेष योगदान रहा है उन्होंने परमात्मा की इबादत के लिए फारसी की ग़ज़ल शैली को अपनाया और हिंदुस्तानी राग और तालों में डालकर इसे पेश किया गया। जन समूह में ग़ज़ल की लोकप्रियता इन्हें सूफी केंद्रों के माध्यम से हुई है, उर्स के मौके पर कव्वाली के रूप में ग़ज़लों द्वारा स्तुति गांव होता था। सूफी कवियों ने भक्ति रस वाली ग़ज़लों में अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन करने के लिए खुलकर अपने भावों को प्रतीकों के रूप में प्रयोग किया इन प्रतीकों का संबंध भले ही दुनियावी वस्तुओं से है परंतु ग़ज़ल की रमज़ इश्क हकीकी वाली होती है।

3.2.10 मसनवी :

मसनवी शब्द अरबी जुबान का है परंतु यह फारसी, अदब और शायरी सबसे मकबूल काव्य रूप है। आरम्भ में कथा काव्य तारीखी घटनाएं और किस्से कहानियां मसनवी में बहुत लिखी गईं परंतु फारसी शायरों ने इसको कहानियों या किस्साकारी तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि इसमें प्राकृतिक वर्णन, मनुष्यों के जज्बों की तर्ज मानी भी की। रुदकी जो फारसी का पहला शायर कवि है उसी ने मसनवी काव्य रूप में आरंभिक रचना लिखी। उसकी मसनवी में पहली रचना कलीला ओ दमना है। जो भारतीय रचना यंत्र तंत्र के अरबी में हुए तर्जुमे का फारसी रूप है। रुदकी के अतिरिक्त फिरदौसी, निज़ामी, खुसरो और मौलाना रूमी के नाम इस काव्य रूप

1. संगीत, ग़ज़ल अंक : जनवरी 1967, पृ. 15

के लिए वर्णनीय है। पंजाबी साहित्य के कोश अंतर्गत ''मसनवी का अधिकतर प्रयोग यहां की किस्साकारी में किया गया है, वारिस की हीर इसका उत्तम नमूना है।''[1]

''मौला बख्श कुशता जी उशतर नामा की रचना को वारिस शाह के नाम के साथ जोड़ते हुए हीर वारिस को सूफियाना शायरी के रंगन वाली रचना स्वीकार करते हैं जैसे–

अवल हमद खुदा दा विरद कीजै,
ईश्क कीता सू जग दा मूल मियां ।

पहलां आप है रब ने इश्क कीता,
ते माशूक सी नबी रसूल मीयां।''[2]

''उर्दू पद की एक किस्म, जिसमें कोई कहानी या उपदेश एक ही वक्त में होता है और उसका हर शेयर इसके शेयर के रदीफ काफिया से ना मिलता हो और हर शेयर के दोनों मिसरे अनुप्रास होते हों वह रचना मसनवी कहलाती है।''[3]

पंजाबी साहित्य कोश के अंतर्गत मसनवी उस काव्य रूप को कहते हैं जिसमें दो दो पद समान अनुप्रास में चलते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो जिस प्रकार ग़ज़ल कसीदा या रूबाई में काफीया रदीफ की पाबंदी होती है, उसके विपरीत ऐसी कोई बंदिश ना होने वाला काव्य रूप मसनवी है, बस केवल इतना जरूरी है कि हर शेयर के दोनों मिसरे हम काफिया हो, लेकिन जरूरी नहीं है कि हर आने वाला शेयर पहले से हम काफिया हो।

मसनवी एक बाहरमुखी काव्य रूप है। मसनवियों के आरंभ में खुदा की बंदगी, पीरों की आराधना, वक्त के बादशाह की तारीफ और मसनवी लिखने का कारण भी अंकित किया जाता है। मसनवी काव्य रूप की एक विशेषता यह भी है कि मसनवी रचना के अंत में शायर अपना नाम, निवास स्थान और मसनवी के नाम कॉल का भी ज़िक्र करते हैं।

3.2.11 शलोक :

विभिन्न सूफियाना गायन शैलियों में श्लोक सूफी परम्परा की विशेष काव्य

---

1. प्रेमी, गुरदित सिंह, पंजाबी साहित्य कोश, भाग–1, पृ. 390
2. कुश्ता, मौला बश्ख, पंजाबी शायरां दा तजकरा, पृ. 119
3. मदाह, मो. मुस्तफा खां, उर्द–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 484

रचना है। भले ही हिन्दी और पंजाबी दोनों साहित्य में श्लोक पाए जाते हैं जिन्हें हिन्दू भक्त कवियों और सिख गुरू साहिबानों द्वारा लिखा गाया। इसी की भांति सूफी फकीरों और कवियों ने भी श्लोक काव्य रूप की रचना की जिनमें प्रसिद्ध सूफी फकीर बाबा फरीद जी के श्लोक प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। श्लोक काव्य–रूप की लोकप्रियता के फलस्वरूप श्री गुरू ग्रंथ साहिब में संकलित किया गया। सूफी काव्य परम्परा में बाबा फरीद जी ने सर्वप्रथम पंजाबी भाषा में श्लोक काव्य रूप की रचना की। हिन्दी डिक्शनरी में श्लोक का अर्थ स्तुति, प्रशंसा, पुकार, कीर्तन, यश का गीत, अव्कृश्टप, छन्द, सांस्कृत का कोई पद आदि बताया गया है।

कई विद्वान 'शलोक' और 'दोहा' दोनों को एक ही काव्य रूप में रखते हैं परन्तु दोहा में केवल दो ही मिसरे होते हैं जबकि श्लोक में इन मिसरों की संख्या ज़्यादा रहती है। गुरू ग्रंथ साहिब में श्री गुरू नानक देव जी द्वारा रचित ऐसे श्लोक हैं जिनमें मिसरों की संख्या 26 तक है। इसी की भांति बाबा फरीद जी के श्लोक आठ, छह, चार, तीन, दो मिसरों में भी प्राप्त होते हैं।

इसमें अल्लाह या रब्ब के मिलाप, धार्मिक पाखण्ड, संसारिक नाशवानता, इबादत संबंधी विभिन्न विषयों का वर्णन प्राप्त होता है।

सूफी गायन में श्लोक भक्ति संगीत की भांति ही गायन किया जाता है जिसकी धुन सरल और जनसाधारण के अनुकूल होती है। सूफी महफिलों में, एक मुख्य व्यक्ति द्वारा आरम्भ में श्लोक के दो मिसरे गायन किये जाते हैं। पश्चात् महफिल में शारीक लोक उसी श्लोक का गायन करते हैं। श्लोक सूफियाना गायन की अनिबद्ध गायन शैली है परन्तु वर्तमान में तालबद्ध करके भी गायन किया जाता है। सूफियाना शैली में और कव्वाली गायन में सहायक शैली के रूप में श्लोकों को गायन करके सूफियाना गायन की रंगत को बढ़ाया जाता है। बाबा फरीद के कुछ श्लोक इस प्रकार हैं :

फरीदा बुरे दा भला कर, गुस्सा मन न हंढाए।।
देही रोग न लगई पल्लै सब कुछ पाए।।

फरीदा गलीए चिकड़ दूर घर नाल सारे नेहो।।
चला ता भिजै कम्बली रहां ता तुतै नेहो।।

बाबा फरीद जी के पश्चात् सूफी कवि मियां वजीद साहिब ने भी श्लोक काव्य की रचना की जिसमें उन्होंने समाज में चल रही असमानता, अन्याय आदि घटनाओं का ज़िक्र अपने श्लोकों में किया। उदाहरर्णाथ :

चोर जो करदे चोरी, लिआवण लुट्ट घर,
खांदे दुध मलाई, मलीदे कुट कर
जो रहेंदे तेरी आस, जांदे भुखे मर
वजीदा कौन साहिब नू आखे, एओं नहीं अंज कर।

इक्ना नू रब्ब दौलत दित्ती अगली
इक मुहों जो कहंदे सच्च, रिदै नहीं लगदी
इक मुहों जो आखण झूठ, जो मनदे सच कर
वजीदा कौण साहिब नू आखे एओं नहीं अंज कर।।

उपरोक्त श्लोक काव्य रूप से पुष्टि होती है कि श्लोक ऐसी काव्यबद्ध रचना है जिसके उच्चारण से सूफी फकीरों के संगीत बोध का आभास प्रतीत होता है। जो श्रवण करने वाले पर असर करती है जिसके परिणामस्वरूप श्लोक रचनाएं जनसाधारण में लोकप्रिय हुईं और सूफियाना गायन शैलियों में अहम स्थान रखती हैं क्योंकि सूफी फकीरों ने जो भी रचनाएं रचित कीं उसको संगीत के माध्यम से प्रस्तुत किया।

3.2.12 दोहड़ा :

दोहड़े सूफी गायन शैलियों की विशेष विधा है। पंजाबी सूफी फकीरों ने दोहड़े की विशेष तौर पर रचनाएँ की। सूफी फकीरों द्वारा रचे गए दोहड़े का काव्य स्वरूप हिन्दी काव्य में प्रचलित दोहरा या दोहा से भिन्न है। पंजाबी साहित्यकोश के अनुसार यह एक चौतुका पद है जिसमें तुकांत मेल मिलता है। इसके हर एक पद में दो शेयर होते है। इसलिए उसका नाम दोहड़ा संबोधन हुआ। दोहे या दोहरे की मात्राओं के नियम दोहड़े पर लागू नहीं होते। पंजाबी सूफी कवियों में सुल्तान बाहू के दोहड़े बहुत प्रसिद्ध हैं।

काफी या कव्वाली गायन शैली में शामिल करके दोहड़े का गायन किया जाता है। दूसरा स्वतन्त्र गायन रूप में भी दोहड़े का गायन किया जाता है। दोहड़ा

गायन शैली के लिए संगीतक ज्ञान के अतिरिक्त साहित्य के भाव पक्षों को भी अच्छी तरह से समझ होना अनिवार्य है। दोहड़े में एक विशेष तरह का वैराग और हूक होती है जो गायन करने वाले अथवा श्रवण करने वालों को आलौकिक आनन्द प्रदान करती है। दोहड़े में रब्बी ईश्क, मुर्शिद का गुणगान, धर्म–निरपेक्षता आदि विषयों का समावेश रहता है। दोहड़े की गायन शैली का विकास लोक गायकी के अन्तर्गत अखाड़ों द्वारा ज़्यादा प्रचारित हुआ। लोक गायक सुल्तान बाहू के दोहड़े को अकसर अखाड़ों में प्रस्तुत करते आ रहे हैं। उदाहरणार्थ :

पढ़–पढ़ इलम हज़ार किताबां, आलिम होए सारे हू
हरफ इक इश्क दा ना पढ़ जानण, भुले फिरन विचारे हू

दोहड़ा गायन शैली लोक गायकी में विकसित होकर पश्चात दरगाहों या खानकाहों, साधुओं, पीरों, फकीरों, कव्वालों आदि के दरबारों और अखाड़ों द्वारा प्रसिद्ध हुई।

उपरोक्त वार्तालाप से स्पष्ट हो जाता है कि सूफी परंपरा के प्रचार प्रसार में जहां एक तरफ बाहरी सूफी संतों का विशेष स्थान रहा है उसी की भांति पंजाब क्षेत्र के सूफी फकीरों का सूफी परंपरा के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान है जिसका विवरण अध्याय में किया गया है पंजाब के सूफी फकीरों द्वारा अपने निजी अनुभव के आधार पर सूफी परंपरा के अधीन क्षेत्रीय पंजाबी भाषा में सूफी रचनाओं को समकालीन काव्य शैलियों के अंतर्गत रचित किया गया जो कि वर्तमान में सूफी साहित्य के रूप में लोकप्रिय हैं जिसके अंतर्गत शब्द, श्लोक, दौहड़े , काफियां आदि रूप प्रचारित किए गए और संगीत का आधार पाकर सूफियाना गायन के रूप में पंजाब की संगीत परंपरा में प्रवाहित हैं।

———